



हिंदी उपन्यासों में अकाल-महामारी और मानवीय संवेदनाओं का विघटन

दीपक कुमार उपाध्याय

शोधार्थी, हिंदी विभाग

दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय

सारांश

हिंदी उपन्यासों में अकाल और महामारी केवल प्राकृतिक अथवा स्वास्थ्य संबंधी आपदाएँ नहीं हैं, बल्कि वे सामाजिक विषमता, आर्थिक शोषण, सत्ता-व्यवस्था की विफलता और मानवीय संवेदनाओं के संकट को उजागर करने वाली परिस्थितियाँ हैं। अकाल की विभीषिका में भूख, बेरोजगारी, विस्थापन और अभाव मनुष्य के जीवन को प्रभावित करते हैं, जबकि महामारी भय, मृत्यु, असुरक्षा और सामाजिक अलगाव को जन्म देती है। इन दोनों स्थितियों में मनुष्य के पारस्परिक संबंधों, नैतिक मूल्यों और सामुदायिक चेतना की वास्तविक परीक्षा होती है।

हिंदी के अनेक उपन्यासकारों ने आपदा की इन परिस्थितियों को व्यापक सामाजिक यथार्थ के साथ चित्रित किया है। अमृतलाल नागर के महाकाल में अकाल और भूख के माध्यम से शोषित जनजीवन की त्रासदी तथा सामाजिक-आर्थिक विषमता का प्रभाव दिखाई देता है। इसी प्रकार फणीश्वरनाथ रेणु के मैला आँचल में महामारी, ग्रामीण जीवन, गरीबी और सामाजिक पिछड़ेपन के बीच मनुष्य की संवेदनात्मक स्थिति को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इन रचनाओं में संकट केवल व्यक्ति को शारीरिक रूप से नहीं तोड़ता, बल्कि उसके भीतर भय, स्वार्थ, असुरक्षा और निराशा को भी जन्म देता है। परिणामस्वरूप पारिवारिक और सामाजिक संबंधों में तनाव उत्पन्न होता है तथा सामूहिकता की भावना कमजोर पड़ती है।

हालाँकि, हिंदी उपन्यासों में संकट के बीच मानवीय करुणा, सहयोग और संघर्षशीलता के उदाहरण भी मिलते हैं। इसलिए अकाल और महामारी का साहित्यिक चित्रण केवल संवेदनाओं के विघटन की कथा नहीं है, बल्कि यह मनुष्य के भीतर शेष बची मानवीयता की खोज भी है। प्रस्तुत शोध-पत्र इसी द्वंद्व को केंद्र में रखते हुए यह समझने का प्रयास करता है कि आपदाग्रस्त परिस्थितियाँ किस प्रकार मानवीय संबंधों, नैतिक चेतना और सामाजिक संवेदनशीलता को प्रभावित करती हैं तथा साहित्य इन अनुभवों को किस रूप में अभिव्यक्त करता है।

मुख्य शब्द: अकाल, महामारी, मानवीय संवेदनाएँ, भूख और अभाव, सामाजिक विषमता, शोषण



1. प्रस्तावना

हिंदी उपन्यास का विकास भारतीय समाज के बदलते हुआ जीवन-संदर्भों के साथ गहरे रूप में जुड़ा हुआ है। इस विधा ने केवल व्यक्ति के निजी जीवन, पारिवारिक संबंधों और सामाजिक संघर्षों को ही अभिव्यक्ति नहीं दी, बल्कि युद्ध, विस्थापन, अकाल, महामारी, गरीबी, भूख और प्राकृतिक आपदाओं जैसी सामूहिक त्रासदियों को भी अपनी कथाभूमि बनाया है। विशेष रूप से अकाल और महामारी हिंदी उपन्यासों में ऐसी स्थितियों के रूप में उपस्थित होते हैं, जिनके माध्यम से किसी समाज की वास्तविक संरचना को पहचाना जा सकता है। संकट की घड़ी में यह स्पष्ट होता है कि समाज में संसाधनों का वितरण कितना असमान है, सत्ता किसके पक्ष में खड़ी है और मनुष्य के भीतर करुणा, सहयोग तथा नैतिकता किस सीमा तक जीवित है। प्रस्तुत शोधपत्र में समाजशास्त्रीय एवं विश्लेषणात्मक शोध प्रविधि का प्रयोग किया गया है।

अकाल को सामान्यतः प्रकृति की देन माना जाता है, किंतु हिंदी साहित्य ने बार-बार यह संकेत किया है कि अकाल की भयावहता केवल वर्षा के अभाव से पैदा नहीं होती। अनाज की उपलब्धता, उसके वितरण की व्यवस्था, जमाखोरी, महंगाई, प्रशासनिक उदासीनता और आर्थिक विषमता किसी प्राकृतिक संकट को सामाजिक त्रासदी में बदल देते हैं। रांगेय राघव का विषाद मठ इसका महत्वपूर्ण उदाहरण है। 1943 के बंगाल अकाल की पृष्ठभूमि पर आधारित यह उपन्यास भूख को केवल व्यक्तिगत पीड़ा के रूप में नहीं, बल्कि व्यापक सामाजिक विघटन के रूप में प्रस्तुत करता है। स्वयं रांगेय राघव ने 'दो शब्द' में लिखा कि अंग्रेजी शासन के अंतिम दौर में बंगाल में पड़े अकाल के अनुभव को अभिव्यक्ति देने के लिए उन्होंने इस कृति का नाम विषाद मठ रखा। वे इसे तत्कालीन जनता का "सच्चा इतिहास" मानते हैं।

विषाद मठ में अकाल मनुष्य की सबसे मूलभूत आवश्यकता भोजन को संकट में डाल देता है। भूख धीरे-धीरे सामाजिक और नैतिक संरचनाओं को प्रभावित करती है। जब पेट खाली हो और जीवन बचाने के साधन समाप्त हो जाएँ, तब पारंपरिक नैतिक मूल्य कमजोर पड़ने लगते हैं। इस प्रकार अकाल केवल शरीर को क्षीण नहीं करता, वह सामाजिक संबंधों और मानवीय गरिमा को भी चोट पहुँचाता है। यहाँ प्राकृतिक संकट और मानवीय निर्ममता एक-दूसरे से जुड़ जाते हैं। इस दृष्टि से विषाद मठ को अकाल के सामाजिक इतिहास और मानवीय मनोविज्ञान के बीच स्थित महत्वपूर्ण औपन्यासिक कृति के रूप में देखा जा सकता है।

महामारी के संदर्भ में फणीश्वरनाथ रेणु का मैला आँचल विशेष रूप से उल्लेखनीय है। 1954 में प्रकाशित यह उपन्यास पूर्णिया के मेरीगंज गाँव को केंद्र में रखकर ग्रामीण भारत के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन का व्यापक चित्र प्रस्तुत करता है। उपन्यास में मलेरिया और कालाजार जैसी बीमारियाँ केवल चिकित्सकीय समस्याएँ नहीं हैं; वे गरीबी, अशिक्षा, अंधविश्वास, जातिगत विभाजन और प्रशासनिक उपेक्षा से जुड़ी हुई दिखाई देती हैं।

मेरीगंज में डॉ. प्रशांत का आगमन आधुनिक चिकित्सा और वैज्ञानिक चेतना की संभावना का संकेत देता है, लेकिन उसके सामने बीमारी से कहीं अधिक जटिल सामाजिक परिस्थितियाँ हैं। रोगों से पीड़ित ग्रामीणों के बीच अंधविश्वास और सामाजिक भय इस संकट को और गहरा करते हैं। कालाजार और मलेरिया से होने वाली मौतों के कारणों को वैज्ञानिक दृष्टि से समझने के स्थान पर जब उन्हें 'डायन' जैसी रूढ़ धारणाओं से जोड़ दिया जाता है, तब महामारी सामाजिक हिंसा का भी माध्यम बन जाती है। इस प्रकार रेणु यह स्पष्ट करते हैं कि बीमारी का प्रभाव केवल शरीर तक सीमित नहीं रहता; वह समाज की मानसिकता, पारस्परिक



संबंधों और नैतिक चेतना को भी प्रभावित करता है। मैला आँचल में बीमारी, निर्धनता और अंधविश्वास के इस संबंध की आलोचनात्मक चर्चा उपलब्ध अध्ययनों में भी की गई है।

हिंदी उपन्यासों में प्राकृतिक आपदाओं का यह चित्रण इसलिए महत्वपूर्ण है कि यहाँ 'प्रकृति' को अकेले दोषी नहीं ठहराया जाता। आपदा की वास्तविक तीव्रता सामाजिक संरचना से निर्धारित होती है। जिसके पास धन, भूमि, भोजन और सत्ता तक पहुँच है, वह संकट का सामना अपेक्षाकृत आसानी से कर सकता है; इसके विपरीत गरीब, भूमिहीन, मजदूर, स्त्रियाँ और सामाजिक रूप से हाशिए पर स्थित समुदाय सबसे पहले और सबसे अधिक प्रभावित होते हैं। इस प्रकार अकाल और महामारी समाज के भीतर पहले से मौजूद वर्गीय तथा सामाजिक असमानताओं को उजागर करने का कार्य करते हैं।

इन आपदाओं का प्रभाव राजनीतिक क्षेत्र पर भी पड़ता है। मैला आँचल में ग्रामीण जीवन के साथ स्थानीय राजनीति, सत्ता-संघर्ष, दलगत विभाजन और आर्थिक हितों का जटिल संबंध दिखाई देता है। मेरीगंज किसी एक गाँव की कहानी न रहकर स्वतंत्रता प्राप्ति के आसपास के भारतीय समाज का लघु रूप बन जाता है। आलोचनात्मक अध्ययनों में भी इस उपन्यास में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन के समग्र चित्रण को रेखांकित किया गया है।

अतः अकाल और महामारी को केवल प्राकृतिक आपदाएँ मानना हिंदी उपन्यासों के व्यापक सामाजिक यथार्थ को सीमित कर देना होगा। ये संकट समाज के आर्थिक ढाँचे को अस्थिर करते हैं, राजनीतिक व्यवस्था की संवेदनशीलता की परीक्षा लेते हैं और नैतिक मूल्यों की वास्तविक स्थिति सामने लाते हैं। भूख मनुष्य को विवश करती है, बीमारी भय उत्पन्न करती है और मृत्यु का लगातार उपस्थित रहना जीवन के प्रति दृष्टिकोण को बदल देता है। फिर भी हिंदी उपन्यासों की विशेषता यह है कि वे इस विघटन के बीच मानवीय करुणा और प्रतिरोध की संभावनाओं को भी खोजते हैं। विषाद मठ में अकालग्रस्त जनता की पीड़ा और मैला आँचल में बीमारी से जूझते ग्रामीण जीवन के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि आपदा केवल मृत्यु की कथा नहीं, बल्कि समाज की संरचना और मनुष्य की संवेदना की परीक्षा भी है।

2. पूँजीवाद और मानवीय शोषण: 1943 का बंगाल अकाल

1943 का बंगाल अकाल भारतीय इतिहास की उन त्रासद घटनाओं में से है, जिसमें प्राकृतिक संकट से अधिक मानवीय स्वार्थ, युद्धकालीन नीतियों, जमाखोरी, व्यापारिक लालच और प्रशासनिक विफलता की भूमिका दिखाई देती है। हिंदी उपन्यासकारों ने इस अकाल को केवल भूख और मृत्यु की घटना के रूप में नहीं देखा, बल्कि उसके पीछे सक्रिय आर्थिक शक्तियों और सामाजिक शोषण को भी रेखांकित किया है। अमृतलाल नागर का महाकाल और रांगेय राघव का विषाद मठ इसी दृष्टि से महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं। नागर ने बाद में महाकाल का नाम बदलकर भूख कर दिया। 2016 के राजपाल एंड सन्स संस्करण में लेखक की भूमिका और कथा-प्रवेश स्पष्ट रूप से बंगाल अकाल को मनुष्य के स्वार्थ और निहित हितों से जोड़ते हैं।

अमृतलाल नागर के लिए बंगाल का अकाल किसी दैवी प्रकोप का परिणाम नहीं था। भूख की भूमिका में वे स्पष्ट रूप से इसे मनुष्य के स्वार्थ का परिणाम मानते हैं और तत्कालीन अर्थशास्त्री पी. सी. महालनोबिस के आँकड़ों का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि उस वर्ष बंगाल में धान की उपज के आधार पर अकाल की अनिवार्यता नहीं थी। उनके अनुसार युद्धकालीन ब्रिटिश सरकार



तथा निहित स्वार्थों से जुड़े अधिकारियों और व्यापारियों के षड्यंत्र ने संकट को भयावह बनाया। इसी भूमिका में वे भूख से मरते हजारों लोगों, वेश्यावृत्ति की ओर धकेली गई स्त्रियों और दो मुट्ठी चावल के लिए बिकते बच्चों का उल्लेख करते हैं।

महाकाल में अकाल की शुरुआत ही इस बात को सामने लाती है कि खाद्यान्न की कमी केवल उत्पादन की समस्या नहीं थी। युद्ध का वातावरण बनते ही सम्पन्न लोगों ने चावल जमा करना शुरू कर दिया। रईसों ने लंबे समय की खाद्य सुरक्षा का प्रबंध कर लिया, जबकि सामान्य किसान और मजदूर धीरे-धीरे भोजन से वंचित होते गए। व्यापारी चावल की आपूर्ति सीमित करने लगे और जरूरतमंदों की क्रय-शक्ति समाप्त होने के साथ दया और सामाजिक सहयोग भी कमजोर पड़ने लगा। नागर के कथा-प्रवेश में भूख के इस सामाजिक प्रभाव को अत्यंत तीखे ढंग से प्रस्तुत किया गया है—भूख मेहनतकश और ईमानदार मनुष्य को भी लुटेरे में बदल देती है और स्त्रियों को अपनी देह के शोषण की ओर धकेल देती है।

इस संदर्भ में मोनाई केवट का चरित्र विशेष महत्त्व रखता है। वह केवल एक व्यक्ति नहीं, बल्कि उस शोषक आर्थिक मानसिकता का प्रतिनिधि है जो संकट को मानवीय पीड़ा के बजाय लाभ के अवसर के रूप में देखती है। उसके गोदामों में चावल भरा है, किंतु वह भूख से तड़पती जनता को बिना लाभ के अनाज देने को तैयार नहीं। आलोचनात्मक अध्ययन में मोनाई को पूँजीवादी विकृतियों को उद्घाटित करने वाला चरित्र माना गया है; वह अकाल, दुर्घटना और मृत्यु तक को लाभ कमाने के अवसर में बदलने वाली मानसिकता का प्रतीक बन जाता है।

सबसे अधिक मार्मिक प्रसंग स्त्री-जीवन से संबंधित हैं। अकाल के कारण जब परिवारों के पास भोजन का कोई साधन नहीं बचता, तब स्त्री की देह भी बाजार की वस्तु में बदल दी जाती है। भूख में तुलसी बोष्टम का अपनी पत्नी की फटी धोती तक को चावल के लिए बेचने का प्रयास और अंततः स्त्री का पुरुष तथा व्यापारी दोनों प्रकार के दबावों के सामने विवश होना इसी अमानवीय व्यवस्था को व्यक्त करता है। इसी तरह आलोचनात्मक शोध में भूख के उस प्रसंग का उल्लेख मिलता है जिसमें लीबू अपनी पत्नी को मुट्ठी भर चावल के लिए बेच देता है (नागर, 2016, पृ. 45)। यह प्रसंग केवल व्यक्तिगत क्रूरता नहीं, बल्कि उस आर्थिक व्यवस्था का भयावह परिणाम है जिसमें भूख मनुष्य को संबंधों की गरिमा भूलने के लिए विवश कर देती है।

यहाँ 'दो मुट्ठी चावल' केवल भोजन की मात्रा नहीं रह जाता; वह उस आर्थिक व्यवस्था का प्रतीक बन जाता है जिसमें मनुष्य की अस्मिता और जीवन का मूल्य नगण्य हो जाता है। एक ओर भूख से तड़पती स्त्री है और दूसरी ओर अनाज पर नियंत्रण रखने वाला व्यापारी। इस असमानता में बाजार निष्पक्ष नहीं रहता। जिसके पास अन्न है, उसके पास सत्ता है; जिसके पास अन्न नहीं है, उसके पास अपनी देह, श्रम और संबंधों के अतिरिक्त कुछ नहीं बचता। यही वह बिंदु है जहाँ पूँजी और मानवीय संवेदना के बीच संघर्ष स्पष्ट दिखाई देता है।

रांगेय राघव के विषाद मठ में भी अकाल का चित्रण इसी व्यापक मानवीय संकट के संदर्भ में किया गया है। राघव ने 'दो शब्द' में स्पष्ट किया है कि जिस प्रकार बंगाल में पहले के अकाल ने बंकिमचंद्र को आनंद मठ लिखने की प्रेरणा दी थी, उसी प्रकार अंग्रेजी शासन के अंतिम चरण के अकाल ने उन्हें विषाद मठ लिखने के लिए प्रेरित किया। वे इसे तत्कालीन जनता का "सच्चा इतिहास" कहते हैं और अकाल की भयावहता को मनगढ़ंत न मानने पर जोर देते हैं।



विषाद मठ में भूख धीरे-धीरे मनुष्य की शारीरिक शक्ति, सामाजिक संबंधों और मानसिक संतुलन को नष्ट करती है। उपलब्ध पाठ के आरंभिक अंशों में ही आर्थिक दबाव, कर्ज और प्रभावशाली वर्ग की सामाजिक शक्ति का संकेत मिलता है। चट्टोपाध्याय का पक्का मकान और किसानों का उसके ऋणों के नीचे दबा रहना उस वर्गीय विषमता को सामने लाता है जिसमें अकाल आने से पहले ही आर्थिक शोषण मौजूद था। इस प्रकार अकाल उस शोषण को कई गुना अधिक तीखा कर देता है।

दोनों उपन्यासों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनमें पूँजीपति या व्यापारी वर्ग किसी एक व्यक्ति की नैतिक कमजोरी के रूप में नहीं, बल्कि एक ऐसी सामाजिक शक्ति के रूप में उभरता है जो संकट के समय और अधिक ताकतवर हो जाती है। भूखे मनुष्य के लिए जहाँ दो मुट्ठी चावल जीवन-मरण का प्रश्न है, वहीं संचय करने वाले वर्ग के लिए वही चावल लाभ का साधन बन जाता है। परिणामतः अकाल समाज में आर्थिक असमानता को केवल उजागर नहीं करता, बल्कि उसे और क्रूर बना देता है।

इस प्रकार महाकाल और विषाद मठ में 1943 का बंगाल अकाल प्राकृतिक आपदा की सीमित अवधारणा को तोड़कर राजनीतिक-आर्थिक शोषण की कथा बन जाता है। यहाँ मृत्यु केवल भूख से नहीं होती; मनुष्य की मृत्यु उसकी गरिमा, संबंधों और संवेदना के धीरे-धीरे क्षीण होने में भी दिखाई देती है। पूँजी और अनाज पर नियंत्रण रखने वाला वर्ग 'दानव' इसलिए बनता है कि उसके सामने मनुष्य की भूख भी लाभ की गणना में बदल जाती है। दूसरी ओर, पीड़ित मनुष्य की विवशता यह दिखाती है कि अत्यधिक अभाव किस प्रकार नैतिक मूल्यों को कमजोर कर सकता है। फिर भी नागर और रांगेय राघव का साहित्य केवल निराशा का आख्यान नहीं है। उसके भीतर शोषण के विरुद्ध नैतिक आक्रोश और मानवीय करुणा की चेतना भी सक्रिय है। यही कारण है कि इन उपन्यासों में बंगाल का अकाल इतिहास की घटना से आगे बढ़कर पूँजीवादी शोषण, मानवीय संवेदनाओं के विघटन और मनुष्य की गरिमा के संघर्ष का साहित्यिक दस्तावेज बन जाता है।

3. महामारी के बीच मानवीय मूल्य और संघर्ष

फणीश्वरनाथ रेणु का मैला आँचल (1954) हिंदी के आंचलिक उपन्यासों की परंपरा में ऐसी महत्वपूर्ण कृति है, जिसमें किसी एक व्यक्ति की कथा के बजाय पूरे अंचल के सामाजिक जीवन को कथा का केंद्र बनाया गया है। पूर्णिया के मेरीगंज गाँव को आधार बनाकर रेणु ने वहाँ की गरीबी, अशिक्षा, जातिगत विभाजन, अंधविश्वास, राजनीतिक चेतना, आर्थिक विषमता और स्वास्थ्य-संकट को एक-दूसरे से जुड़े हुए रूप में प्रस्तुत किया है। उपन्यास में मलेरिया, कालाजार और हैजा जैसी बीमारियाँ केवल चिकित्सकीय समस्याएँ नहीं हैं, बल्कि वे उस ग्रामीण समाज की जर्जर सामाजिक संरचना को उजागर करती हैं, जहाँ बीमारी के साथ-साथ अज्ञान और अंधविश्वास भी मनुष्य के जीवन के लिए गंभीर संकट बन जाते हैं। राजकमल प्रकाशन भी उपन्यास के परिचय में मेरीगंज के ग्रामीण जीवन के साथ उसके पिछड़ेपन, अज्ञान, अंधविश्वास और सामाजिक शोषण को विशेष रूप से रेखांकित करता है।

मेरीगंज की बीमारी का सबसे भयावह पक्ष यह है कि वहाँ रोग केवल शरीर में नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना में भी व्याप्त है। मलेरिया और कालाजार से लगातार होने वाली मौतों ने ग्रामीण जीवन में भय का वातावरण पैदा कर दिया है। बीमारी के वैज्ञानिक कारणों को समझने के बजाय ग्रामीण समाज कई बार उसे देवी-देवताओं, टोना-टोटका, भूत-प्रेत अथवा डायन जैसी मान्यताओं से जोड़ता है। इस प्रकार रोग के साथ अंधविश्वास का दूसरा संकट खड़ा हो जाता है। व्यक्ति चिकित्सकीय उपचार लेने के स्थान पर रूढ़िगत विश्वासों का सहारा लेने लगता है और बीमारी के वास्तविक कारणों से लड़ने की क्षमता कमजोर पड़ती जाती है।



उपन्यास में ग्रामीण समाज की अशिक्षा और अंधविश्वास को जिस तरह प्रस्तुत किया गया है, उससे स्पष्ट होता है कि रेणु के लिए महामारी केवल स्वास्थ्य की समस्या नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना के पिछड़ेपन का भी परिणाम है।

इसी संकटपूर्ण वातावरण में डॉ. प्रशांत का चरित्र मानवीय संवेदना का सबसे उज्ज्वल केंद्र बनकर सामने आता है। उनका मेरीगंज में आना केवल एक डॉक्टर का किसी गाँव में नियुक्त होना नहीं है; यह आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि और मानवीय करुणा का उस समाज में प्रवेश है, जहाँ बीमारी, अज्ञान और अंधविश्वास ने जीवन को घेर रखा है। मैला आँचल के कथानायक के रूप में डॉ. प्रशांत एक ऐसे युवा चिकित्सक हैं, जो अपनी शिक्षा पूरी करने के बाद पिछड़े ग्रामीण क्षेत्र को अपना कार्यक्षेत्र चुनते हैं और वहाँ की जनता के दुख-दैन्य तथा सामाजिक शोषण को प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं।

डॉ. प्रशांत की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे रोगी को केवल 'रोगी' के रूप में नहीं देखते। उनके लिए उसके पीछे एक पूरा मनुष्य, परिवार और सामाजिक संसार मौजूद है। इसलिए उनकी चिकित्सा-चेतना मानवीय संवेदना से अलग नहीं होती। "डॉक्टर प्रशांत रोगी की नाड़ी पकड़कर ही रोग का निदान नहीं करता, वह तो रोगी के अंतरतम में प्रवेश कर उसकी आत्मा की धड़कन सुनता है।" (रेणु, 2021, पृ. 120)। वे बीमारी से लड़ते हुए उस अज्ञान से भी संघर्ष करते हैं जो बीमारी को और अधिक भयावह बनाता है। इस दृष्टि से उनका संघर्ष दोहरा है—एक ओर मलेरिया और कालाजार जैसे रोग हैं और दूसरी ओर सामाजिक रूढ़ियाँ, अंधविश्वास और अशिक्षा। इसीलिए डॉ. प्रशांत का चरित्र आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान और मानवीयता के बीच एक सेतु का कार्य करता है। रेणु ने डॉ. प्रशांत को किसी आदर्शवादी, वास्तविकता से कटे हुए नायक के रूप में नहीं गढ़ा है। वे जिस समाज में काम करते हैं, उसकी जटिलताओं को समझते हैं। वे जानते हैं कि केवल दवा देकर बीमारी को समाप्त नहीं किया जा सकता, क्योंकि बीमारी की जड़ें गरीबी, गंदगी, अज्ञान और सामाजिक पिछड़ेपन में भी मौजूद हैं। इसीलिए उनका चिकित्सकीय कार्य धीरे-धीरे सामाजिक दायित्व का रूप ग्रहण करता है। महामारी के बीच उनका बने रहना स्वयं मानवीय प्रतिबद्धता का प्रमाण है।

डॉ. प्रशांत की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे रोगी को केवल 'रोगी' के रूप में नहीं देखते। उनके लिए उसके पीछे एक पूरा मनुष्य, परिवार और सामाजिक संसार मौजूद है। इसलिए उनकी चिकित्सा-चेतना मानवीय संवेदना से अलग नहीं होती। वे बीमारी से लड़ते हुए उस अज्ञान से भी संघर्ष करते हैं जो बीमारी को और अधिक भयावह बनाता है। इस दृष्टि से उनका संघर्ष दोहरा है—एक ओर मलेरिया और कालाजार जैसे रोग हैं और दूसरी ओर सामाजिक रूढ़ियाँ, अंधविश्वास और अशिक्षा। इसीलिए डॉ. प्रशांत का चरित्र आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान और मानवीयता के बीच एक सेतु का कार्य करता है। रेणु ने डॉ. प्रशांत को किसी आदर्शवादी, वास्तविकता से कटे हुए नायक के रूप में नहीं गढ़ा है। वे जिस समाज में काम करते हैं, उसकी जटिलताओं को समझते हैं। वे जानते हैं कि केवल दवा देकर बीमारी को समाप्त नहीं किया जा सकता, क्योंकि बीमारी की जड़ें गरीबी, गंदगी, अज्ञान और सामाजिक पिछड़ेपन में भी मौजूद हैं। इसीलिए उनका चिकित्सकीय कार्य धीरे-धीरे सामाजिक दायित्व का रूप ग्रहण करता है। महामारी के बीच उनका बने रहना स्वयं मानवीय प्रतिबद्धता का प्रमाण है।

यहाँ उपन्यास का एक महत्वपूर्ण मानवीय पक्ष सामने आता है। महामारी सामान्य परिस्थितियों में बने सामाजिक संबंधों की वास्तविकता को उजागर कर देती है। मृत्यु का भय मनुष्य को स्वार्थी और आत्मकेंद्रित बना सकता है। संक्रमित व्यक्ति से दूरी, रोग के प्रति भय और अंधविश्वास के कारण सामाजिक सहानुभूति कमजोर पड़ सकती है। लेकिन डॉ. प्रशांत इसके विपरीत दिशा में खड़े दिखाई देते हैं। वे भय के सामने पीछे हटने के बजाय रोगियों के बीच उपस्थित रहते हैं। उनकी उपस्थिति यह स्थापित

करती है कि संकट के समय मनुष्य की सबसे बड़ी शक्ति केवल विज्ञान नहीं, बल्कि विज्ञान से जुड़ी हुई करुणा और उत्तरदायित्व-बोध भी है। डॉ. प्रशांत के चरित्र में 'महामानवता' का अर्थ किसी असाधारण या अलौकिक शक्ति से नहीं है। यहाँ महामानवता का अर्थ उस मानवीय चेतना से है, जो निजी हित से ऊपर उठकर दूसरे मनुष्य के जीवन को महत्व देती है। जब पूरा वातावरण मृत्यु और भय से घिरा हो, तब पीड़ितों के बीच रहकर उनकी सेवा करना मानवीय मूल्यों की रक्षा का कार्य बन जाता है। इस अर्थ में डॉ. प्रशांत महामारी के बीच बुझती हुई मानवीय संवेदनाओं के विरुद्ध जलती हुई मशाल हैं।

इस संदर्भ में रेणु की दृष्टि विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। वे गाँव के अंधविश्वास और अशिक्षा की आलोचना करते हैं, लेकिन ग्रामीणों को केवल अज्ञानी या पिछड़ा कहकर खारिज नहीं करते। उनके भीतर भय, असुरक्षा और जीवन के प्रति संघर्ष को भी समझते हैं। यही कारण है कि मैला आँचल में महामारी का चित्रण करुणा से जुड़ा हुआ है। उपन्यासकार बीमारी से पीड़ित मनुष्य को उसकी सामाजिक परिस्थितियों सहित देखता है। डॉ. प्रशांत इसी दृष्टि को व्यवहार में परिणत करते हैं। उपन्यास में लोकजीवन और चिकित्सा-चेतना का यह संघर्ष केवल अतीत की समस्या नहीं है। बीमारी के समय अफवाह, अंधविश्वास और भय किस प्रकार वैज्ञानिक चेतना पर हावी हो सकते हैं, यह प्रश्न आज भी प्रासंगिक है। मैला आँचल का महत्व इसीलिए बढ़ जाता है कि वह महामारी के बहाने मनुष्य और समाज के संबंधों की पड़ताल करता है। डॉ. प्रशांत हमें यह याद दिलाते हैं कि बीमारी के विरुद्ध संघर्ष में चिकित्सकीय उपचार के साथ विश्वास, जागरूकता, सहानुभूति और सामाजिक सहयोग भी आवश्यक हैं।

4. पारिवारिक और सामाजिक संरचना का विघटन

महामारी केवल मनुष्य के शरीर को प्रभावित करने वाली बीमारी नहीं होती, बल्कि उसके प्रभाव से परिवार, सामाजिक संबंध और सामुदायिक जीवन की पूरी संरचना भी प्रभावित होती है। सामान्य परिस्थितियों में परिवार व्यक्ति को सुरक्षा, अपनापन और भावनात्मक सहारा प्रदान करता है, किंतु महामारी के समय मृत्यु का भय इन संबंधों की स्थिरता को हिला देता है। बीमारी के संक्रमण से बचने के लिए लोग एक-दूसरे से दूरी बनाने लगते हैं, घर खाली होने लगते हैं और सामूहिक जीवन का सहज प्रवाह टूट जाता है। हिंदी साहित्य में महामारी के इस सामाजिक और पारिवारिक प्रभाव का अत्यंत मार्मिक चित्रण मिलता है। सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की कुल्ली भाट, केशवप्रसाद मिश्र की कोहबर की शर्त और कमलाकांत त्रिपाठी की पाहीघर जैसी कृतियों में महामारी के संदर्भ ग्रामीण जीवन की असुरक्षा, मृत्यु-बोध और पारिवारिक विघटन को समझने का महत्वपूर्ण आधार प्रदान करते हैं।

कुल्ली भाट में प्लेग का प्रसंग ग्रामीण समाज पर महामारी के तत्काल प्रभाव को सामने लाता है। निराला अपने अनुभव के माध्यम से बताते हैं कि गाँव में प्लेग फैलने पर लोग अपने घरों को छोड़कर बागों में जाकर झोपड़ियाँ डालकर रहने लगे थे। गाँव का सामान्य जीवन अचानक विस्थापित हो जाता है। घर, जो सुरक्षा और अपनत्व का केंद्र होता है, महामारी के समय भय का स्थान बन जाता है। लोग अपने परिचित परिवेश से बाहर निकलने के लिए विवश होते हैं। इस स्थिति में सामाजिक निकटता की जगह दूरी और असुरक्षा ले लेती है। महामारी केवल रोगियों को अलग नहीं करती, बल्कि पूरे समुदाय को अपने ही परिवेश से विस्थापित कर देती है।



निराला के जीवन में महामारी का अनुभव इससे भी अधिक त्रासद रूप ग्रहण करता है। कुल्ली भाट के आत्मकथात्मक अंशों में उनके वैवाहिक जीवन के आरंभिक समय में गाँव में फैले प्लेग का उल्लेख मिलता है। विवाह के तुरंत बाद महामारी के भय से परिवार को गाँव से बाहर रहना पड़ता है। बाद में 1918 की इन्फ्लुएंजा महामारी ने निराला के परिवार को गहरे स्तर पर प्रभावित किया और उनकी पत्नी मनोहरा देवी सहित परिवार के अनेक सदस्य काल-कवलित हुए। इस व्यक्तिगत त्रासदी ने महामारी को उनके लिए केवल सामाजिक घटना नहीं रहने दिया, बल्कि उसे निजी जीवन की असहनीय पीड़ा में बदल दिया। इसीलिए कुल्ली भाट में महामारी का अनुभव मृत्यु, वियोग और जीवन की अस्थिरता के साथ जुड़ जाता है।

महामारी के इस वातावरण में सबसे अधिक प्रभावित पारिवारिक संरचना होती है। परिवार के एक सदस्य की मृत्यु केवल एक व्यक्ति की मृत्यु नहीं होती; उसके साथ परिवार की भूमिका, आर्थिक व्यवस्था और भावनात्मक संतुलन भी बदल जाता है। माता-पिता, पति-पत्नी, भाई-बहन और संतान के संबंध अचानक नई परिस्थितियों के सामने खड़े हो जाते हैं। मृत्यु के बाद जीवित बचे लोगों पर आर्थिक और सामाजिक जिम्मेदारियों का भार बढ़ जाता है। इस प्रकार महामारी परिवार को केवल भावनात्मक स्तर पर ही नहीं, बल्कि आर्थिक और सामाजिक स्तर पर भी कमजोर करती है।

निराला की रचना में महामारी का एक दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि मृत्यु के व्यापक वातावरण में मनुष्य की असुरक्षा उजागर होती है। जब चारों ओर बीमारी और मृत्यु का भय हो, तब जीवन की सामान्य योजनाएँ—विवाह, परिवार, सामाजिक प्रतिष्ठा और भविष्य की आकांक्षाएँ—अचानक अर्थहीन लगने लगती हैं। इस प्रकार महामारी मनुष्य को यह अनुभव कराती है कि सामाजिक व्यवस्था कितनी नाजुक है और जीवन की स्थिरता कितनी क्षणभंगुर।

केशवप्रसाद मिश्र के कोहबर की शर्त में महामारी का चित्रण ग्रामीण पारिवारिक जीवन के और अधिक व्यापक विघटन के रूप में सामने आता है। बलिहार और चौबेछपरा जैसे गाँवों का जीवन पारिवारिक संबंधों, पारस्परिक सहयोग और सामुदायिक सहभागिता पर आधारित है। लेकिन जब बीमारी गाँव में प्रवेश करती है, तो वही सामुदायिक जीवन भय और शोक से भर जाता है। एक घर में बीमारी का प्रवेश धीरे-धीरे पूरे गाँव को प्रभावित करता है। लोग बीमारी के भय से अपने सामान्य कार्यों से दूर होने लगते हैं और गाँव की सामूहिक चेतना पर मृत्यु का साया छा जाता है।

कोहबर की शर्त में महामारी के प्रसंग की विशेषता यह है कि बीमारी का प्रभाव केवल रोगी तक सीमित नहीं रहता। एक परिवार के भीतर बीमारी फैलने के साथ परिवार के दूसरे सदस्य भी भय, चिंता और सेवा के दायित्व से घिर जाते हैं। ओंकार के बीमार पड़ने पर चंदन और गुंजा की चिंता, उसकी सेवा तथा घर के वातावरण में छा जाने वाला भय यह दिखाता है कि महामारी किस प्रकार परिवार के प्रत्येक सदस्य को प्रभावित करती है। बीमारी के समय घर का सामान्य जीवन रुक जाता है और परिवार के सदस्य अपने व्यक्तिगत सुख-दुख से ऊपर उठकर जीवन बचाने की चिंता में लग जाते हैं। महामारी का सबसे मार्मिक प्रभाव तब दिखाई देता है जब मृत्यु परिवार के किसी केंद्रीय सदस्य को छीन लेती है। ओंकार की पत्नी रूपा की मृत्यु के बाद घर का पूरा वातावरण बदल जाता है। गुंजा का विलाप, चंदन का अकेलापन और परिवार की जिम्मेदारियों का अचानक उसके ऊपर आ जाना यह स्पष्ट करता है कि महामारी संबंधों को केवल भावनात्मक रूप से नहीं तोड़ती, बल्कि परिवार की पूरी संरचना को पुनर्गठित कर देती है। जो व्यक्ति कल तक परिवार का सदस्य था, उसकी अनुपस्थिति अगले ही क्षण आर्थिक, सामाजिक और मानसिक संकट का कारण बन जाती है। इस परिस्थिति में रिश्तों की बेमानी का अर्थ यह नहीं है कि प्रेम और आत्मीयता पूरी तरह



समाप्त हो जाती है। बल्कि महामारी यह उजागर करती है कि केवल रक्त-संबंध मनुष्य को संकट से नहीं बचा सकते। वास्तविक संबंध वही हैं जो संकट के समय साथ खड़े हों। कोहबर की शर्त में बीमारी के समय चंदन, गुंजा और परिवार के अन्य सदस्यों का परस्पर सहयोग इसी मानवीय पक्ष को सामने लाता है। इस प्रकार महामारी एक ओर पारिवारिक संरचना को तोड़ती है, तो दूसरी ओर बचे हुए संबंधों की वास्तविक शक्ति की परीक्षा भी लेती है।

कमलाकांत त्रिपाठी का पाहीघर भी ग्रामीण और पारिवारिक जीवन के व्यापक ऐतिहासिक संकटों को समझने की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसमें अवध के गाँव और परिवार की कथा के माध्यम से ऐसे समय का चित्रण किया गया है जब सामाजिक संरचनाएँ बड़े राजनीतिक और ऐतिहासिक परिवर्तनों से प्रभावित हो रही थीं। महामारी के संदर्भ को इस व्यापक संकट-बोध के साथ देखने पर स्पष्ट होता है कि ग्रामीण समाज में बीमारी, मृत्यु, विस्थापन और सामाजिक अस्थिरता एक-दूसरे से अलग घटनाएँ नहीं हैं। संकट जब लगातार उपस्थित रहता है, तो परिवार और समुदाय की पारंपरिक संरचनाएँ धीरे-धीरे कमजोर होने लगती हैं। इन तीनों कृतियों में महामारी का महत्त्व इस बात में है कि वह व्यक्ति और समाज के बीच संबंधों की परीक्षा लेती है। प्लेग या इन्फ्लुएंजा जैसी महामारियाँ ग्रामीण जीवन की उस संरचना को हिला देती हैं जो पारिवारिक एकता और सामुदायिक सहयोग पर टिकी होती है। घरों का खाली होना, लोगों का विस्थापित होना, मृत्यु का लगातार उपस्थित रहना और परिवार के सदस्यों का एक-दूसरे से बिछुड़ना सामाजिक विघटन की प्रक्रिया को तीव्र करता है।

इस प्रकार कुल्ली भाट में महामारी व्यक्तिगत त्रासदी और व्यापक सामाजिक मृत्यु-बोध का रूप ग्रहण करती है, कोहबर की शर्त में वह परिवार और गाँव के सामूहिक जीवन को भय तथा शोक से भर देती है और पाहीघर में संकटग्रस्त ग्रामीण समाज की व्यापक अस्थिरता को समझने का आधार प्रदान करती है। महामारी के कारण टूटता परिवार केवल कुछ व्यक्तियों का बिखराव नहीं है; यह उस सामाजिक व्यवस्था के विघटन का संकेत है जिसमें मनुष्य अपने अस्तित्व को संबंधों के माध्यम से सुरक्षित अनुभव करता है। फिर भी इन रचनाओं में मानवीय संवेदना पूरी तरह समाप्त नहीं होती। मृत्यु और विस्थापन के बीच सेवा, सहानुभूति, पारिवारिक दायित्व और सामुदायिक सहयोग की भावनाएँ यह प्रमाणित करती हैं कि महामारी मनुष्यता को चुनौती अवश्य देती है, लेकिन उसे पूरी तरह नष्ट नहीं कर पाती।

5. निष्कर्ष

हिंदी उपन्यासों में अकाल, महामारी और उनसे उत्पन्न मानवीय संकट का चित्रण केवल आपदाओं का वर्णन नहीं है, बल्कि यह भारतीय समाज की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और नैतिक संरचना की गहरी पड़ताल है। प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि अकाल और महामारी मनुष्य के जीवन को केवल मृत्यु और बीमारी के स्तर पर प्रभावित नहीं करते, बल्कि वे उसके संबंधों, विश्वासों, नैतिक मूल्यों और सामुदायिक चेतना की भी परीक्षा लेते हैं। इन परिस्थितियों में समाज के भीतर छिपी असमानताएँ, शोषण की प्रवृत्तियाँ और व्यवस्था की कमजोरियाँ अधिक स्पष्ट होकर सामने आती हैं। इसीलिए हिंदी उपन्यासों में अकाल और महामारी का संसार वस्तुतः मानवीय संवेदनाओं के विघटन और उनके पुनर्संरक्षण के द्वंद्व का संसार है।

अमृतलाल नागर के महाकाल और रांगेय राघव के विषाद मठ में 1943 के बंगाल अकाल की पृष्ठभूमि के माध्यम से भूख को मानवीय अस्तित्व के सबसे भयावह संकट के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इन रचनाओं में अकाल केवल प्रकृति की विफलता



नहीं है, बल्कि आर्थिक स्वार्थ, जमाखोरी, शोषण और असमान वितरण की अमानवीय व्यवस्था से जुड़ा हुआ दिखाई देता है। एक ओर भूख से मनुष्य अपने परिवार और जीवन को बचाने के लिए विवश है, दूसरी ओर अनाज पर नियंत्रण रखने वाला वर्ग उसी संकट को लाभ कमाने के अवसर में बदल देता है। इस विरोधाभास के कारण अकाल का वास्तविक चेहरा सामने आता है। यहाँ भूख केवल पेट की आवश्यकता नहीं रह जाती, बल्कि वह मनुष्य की गरिमा, संबंधों और नैतिक विवेक को चुनौती देने वाली शक्ति बन जाती है। महाकाल में अकालग्रस्त मनुष्य की विवशता और शोषक वर्ग की संवेदनहीनता के बीच जो अंतर दिखाई देता है, वह पूँजी और मनुष्यता के संघर्ष को स्पष्ट करता है। अनाज का अभाव जहाँ गरीबों को जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित करता है, वहीं संपन्न वर्ग के लिए वही अनाज आर्थिक शक्ति का माध्यम बन जाता है। स्त्रियों का शोषण, परिवारों का बिखरना और मनुष्य का अपनी आवश्यकताओं के सामने विवश हो जाना इस बात को प्रमाणित करता है कि आर्थिक संकट सबसे पहले कमजोर वर्ग की मानवीय गरिमा को प्रभावित करता है। विषाद मठ भी अकाल की इसी त्रासदी को व्यापक सामाजिक संदर्भ में प्रस्तुत करता है। दोनों रचनाओं में भूख के माध्यम से यह प्रश्न उठता है कि यदि समाज में जीवन बचाने के लिए आवश्यक संसाधन मौजूद हों, फिर भी कुछ लोग भूख से मरने को विवश हों, तो संकट केवल प्राकृतिक नहीं बल्कि सामाजिक और मानवीय भी है।

फणीश्वरनाथ रेणु का मैला आँचल महामारी के संदर्भ को एक अलग लेकिन समान रूप से महत्वपूर्ण आयाम प्रदान करता है। मेरीगंज में मलेरिया और कालाजार की विभीषिका के माध्यम से रेणु ने बीमारी के साथ जुड़ी गरीबी, अशिक्षा, अंधविश्वास और सामाजिक पिछड़ेपन को उजागर किया है। महामारी यहाँ केवल शरीर को संक्रमित नहीं करती, बल्कि सामाजिक चेतना को भी प्रभावित करती है। बीमारी के भय के बीच लोग वैज्ञानिक उपचार के स्थान पर अंधविश्वासों का सहारा लेते हैं और मृत्यु का लगातार उपस्थित रहना सामुदायिक जीवन में भय तथा असुरक्षा पैदा करता है। इस स्थिति में डॉ. प्रशांत का चरित्र मानवीय संवेदना और वैज्ञानिक चेतना का प्रतिनिधित्व करता है। वे संकट के बीच मनुष्य को केवल रोगी के रूप में नहीं, बल्कि एक पीड़ित और गरिमापूर्ण जीवन के अधिकारी व्यक्ति के रूप में देखते हैं। इस प्रकार वे महामारी के बीच बची हुई मानवता की संभावना को जीवित रखते हैं।

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की कुल्लू भाट में महामारी का अनुभव व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों स्तरों पर दिखाई देता है। प्लेग के कारण ग्रामीण जीवन का विस्थापन और बाद में महामारीजनित पारिवारिक त्रासदी यह दिखाती है कि बीमारी किस प्रकार व्यक्ति को उसके परिचित सामाजिक परिवेश से अलग कर देती है। परिवार, जो सामान्य परिस्थितियों में सुरक्षा का आधार होता है, महामारी के समय मृत्यु और वियोग से टूटने लगता है। इसी प्रकार कोहबर की शर्त में महामारी के प्रसंग परिवार और ग्रामीण समुदाय की संरचना को प्रभावित करते हैं। बीमारी और मृत्यु के सामने पारिवारिक संबंधों की वास्तविक शक्ति और उनकी सीमाएँ दोनों उजागर होती हैं। पाहीघर जैसे उपन्यासों में भी संकटग्रस्त ग्रामीण जीवन के व्यापक संदर्भ से यह समझने में सहायता मिलती है कि सामाजिक अस्थिरता व्यक्ति और समुदाय दोनों के जीवन को प्रभावित करती है।

इन सभी रचनाओं का समग्र अध्ययन यह स्थापित करता है कि आपदा के समय मानवीय संवेदनाओं का विघटन अचानक नहीं होता। उसके पीछे पहले से मौजूद सामाजिक असमानता, आर्थिक विषमता, अज्ञान, सत्ता की उदासीनता और स्वार्थ की मानसिकता काम करती है। अकाल और महामारी इन कमजोरियों को अत्यधिक तीव्र बना देते हैं। भूख मनुष्य को विवश करती है, बीमारी उसे भयभीत करती है और लगातार मृत्यु का वातावरण उसके भीतर निराशा उत्पन्न करता है। ऐसी परिस्थितियों में

स्वार्थ, हिंसा, शोषण और संवेदनहीनता बढ़ सकती है। लेकिन यही वह बिंदु है जहाँ हिंदी उपन्यास अपने सबसे महत्वपूर्ण मानवीय पक्ष को सामने लाते हैं। इन उपन्यासों की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि वे निराशा के बीच भी मनुष्य की लोक-जिजीविषा को समाप्त नहीं होने देते। भूख से जूझता किसान, बीमारी से लड़ता ग्रामीण, परिवार को बचाने के लिए संघर्ष करता व्यक्ति और रोगियों की सेवा में लगे डॉ. प्रशांत—ये सभी पात्र इस बात के प्रतीक हैं कि विपत्ति मनुष्य को पराजित नहीं कर सकती। लोकजीवन में बची हुई पारस्परिक सहायता, करुणा, सेवा, श्रम और संघर्ष की चेतना मानवीय अस्तित्व को आगे बढ़ाती है।

अतः इस शोध का निष्कर्ष यह है कि हिंदी उपन्यासों में अकाल और महामारी मृत्यु, भूख और लाशों का मात्र आख्यान नहीं हैं। वे उस व्यवस्था का भी दस्तावेज हैं जो संकट में कमजोर मनुष्य को और अधिक असुरक्षित बना देती है; वे उस मानवीय क्रूरता का उद्घाटन करते हैं जो दूसरे की विवशता में अपना लाभ खोजती है; और वे उस सामाजिक विफलता को सामने लाते हैं जहाँ समय पर सहायता, चिकित्सा और संसाधनों का न्यायपूर्ण वितरण नहीं हो पाता। लेकिन इसके साथ ही ये उपन्यास यह भी प्रमाणित करते हैं कि घनघोर निराशा के बीच मनुष्यता की लौ पूरी तरह नहीं बुझती। इस दृष्टि से अकाल और महामारी हिंदी उपन्यासों में विघटन और प्रतिरोध दोनों के आख्यान हैं। एक ओर वे परिवार, समाज, अर्थव्यवस्था और नैतिक मूल्यों के टूटने की कथा कहते हैं, तो दूसरी ओर करुणा, सहयोग, सेवा, संघर्ष और जीवन के प्रति अदम्य आस्था की शक्ति को सामने लाते हैं। यही लोक-जिजीविषा इन रचनाओं को केवल अपने समय का साहित्यिक दस्तावेज न बनाकर सार्वकालिक मानवीय दस्तावेज बनाती है। अंततः इन उपन्यासों का सबसे महत्वपूर्ण संदेश यही है कि किसी भी आपदा की वास्तविक भयावहता केवल कितनी मौतें हुईं, इसमें नहीं मापी जा सकती; उसकी गहराई इस बात से भी तय होती है कि उस अंधकार के बीच मनुष्य ने अपनी मनुष्यता को कितना बचाए रखा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- त्रिपाठी, कमलाकांत. (2024). *पाहीघर*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
- नागर, अमृतलाल. (2016). *भूख (मूल शीर्षक: महाकाल)*. नई दिल्ली: राजपाल एंड सन्स।
- निराला, सूर्यकांत त्रिपाठी. (2004). *कुल्ली भाट*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
- मिश्र, केशवप्रसाद. (2015). *कोहबर की शर्त*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
- रांगेय राघव. (2006). *विषाद मठ*. नई दिल्ली: किताबघर प्रकाशन।
- रेणु, फणीश्वरनाथ. (2021). *मैला आँचल*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
- सिंह, नामवर. (1994). *आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ*. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन।
- शर्मा, रामविलास. (1998). *निराला की साहित्य साधना*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
- उपाध्याय, यदुनन्दन प्रसाद. (2016). "मैला आँचल का यथार्थ." रचनाकार।